चुनावी मुद्दों से शिक्षा गायब क्यों

क्या भारतीय लोकतंत्र के लिए शिक्षा चुनावी घोषणापत्रों में सिर्फ उल्लेख करने लायक मुद्दा रह गया है?

हरिवंश चतुर्वेदी
डायरेक्टर, बिमटेक

सभी राजनीतिक दल अपने घोषणापत्रों को अंतिम रूप देने में जुटे हुए हैं। मीडिया में बहस जारी है कि इन आम चुनावों के निर्णायक मुद्दे क्या होंगे? अभी तक जिन मुद्दों को मीडिया में और चुनावी सभाओं में उठाया गया है, वे राष्ट्रीय सुरक्षा, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, कृषि संकट और गरीबी से जुड़े हुए हैं। इस समूचे राजनीतिक विमर्श से शिक्षा, स्वास्थ्य, लैंगिक समानता और मानव विकास से जुड़े तमाम मुद्दे एक सिरे से गायब हैं। हर बार की तरह इस बार भी घोषणापत्रों में शिक्षा, स्वास्थ्य और मानव विकास से जुड़े कुछ बिंदुओं का जिक्र, मुख्य मुद्दे के रूप में न होकर, हाशिये के मुद्दे के रूप में सीमित रहेगा। क्या भारतीय लोकतंत्र के लिए शिक्षा चुनावी घोषणापत्रों में सिर्फ उल्लेख करने लायक मुद्दा रह गया है?

चित्रांकन : डी. श्रीनिवास

हमारी शिक्षा व्यवस्था दुनिया की दूसरी सबसे विशाल व्यवस्था है। सिर्फ चीन की शिक्षा व्यवस्था को इसकी तुलना में रखा जा सकता है। भारत में पहली से 12वीं कक्षा तक के 15 लाख से ज्यादा स्कूलों में करीब 25 करोड़ विद्यार्थी पढ़ते हैं। हमारी उच्च शिक्षा व्यवस्था भी दुनिया में दूसरे नंबर पर आती है। 903 विश्वविद्यालयों और 45,000 कॉलेजों में करीब 3.6 करोड़ विद्यार्थी अध्ययनरत हैं। इस तरह, लगभग 29 करोड़ बच्चे और युवा सीधे तौर से शिक्षा से जुड़े हैं। ये सभी हर रोज कुछ उम्मीदों, सपनों और संकल्पों के साथ स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटी में जाते हैं। उनके सपने मां-बाप की आकांक्षाओं से भी जुड़े हैं, क्योंकि बड़े होकर भविष्य में इन बच्चों और नौजवानों को ही अपने वृद्ध मां-बाप की देखरेख करनी होगी।

प्राइमरी, माध्यमिक और उच्च शिक्षा देश के हर परिवार को प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से प्रभावित करती है। मध्यवर्गीय घरों में बर्तन साफ करने वाली महिलाएं, रिक्शा चालक, कुली और खेतिहर मजदूर भी अपना पेट काटकर अपने बच्चों को पढ़ाने-लिखाने के लिए संघर्ष करते हैं। वे ऐसा इसलिए करते हैं, क्योंकि शिक्षा ही एकमात्र माध्यम है, जो उनके बच्चों को विपन्नता के अभिशाप से निजात दिला सकता है।

ऐसे में, भारतीय लोकतंत्र के भाग्य विधाताओं की सोच में शिक्षा के प्रति जो उदासीनता है, उसकी जांच-पड़ताल करने की जरूरत है। आखिर वे क्या कारण हैं कि हमारे राजनेताओं को आम चुनाव के मौके पर कुछ ऐसे मुद्दों की जरूरत रहती है, जो लोक-लुभावन हों और मतदाताओं को भावनात्मक स्तर पर लुभा सकें। मतदाताओं को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से छोटे-मोटे लालच देकर भ्रमित किया जाता है। आम चुनाव में शिक्षा के मुख्य मुद्दा न बन पाने की एक वजह यह भी है कि इसके लाभ तात्कालिक और भौतिक न होकर ज्यादातर दूरगामी व अदृश्य होते हैं। प्राइमरी, माध्यमिक और उच्च शिक्षा में अभिभावकों और उनके बच्चों द्वारा जो धन, परिश्रम और समय लगाया जाता है, उसका लाभ शिक्षा के सभी स्तरों पर समान रूप से नहीं मिलता। उच्च शिक्षा में लाभ की दर सबसे ज्यादा और प्राइमरी शिक्षा में सबसे कम होती है। गरीब परिवारों के बच्चे आर्थिक अभाव, सूचनाओं की कमी और उचित मार्गदर्शन न मिल पाने के कारण प्राइमरी शिक्षा के बाद स्कूली शिक्षा में 12वीं तक भी नहीं पहुंच पाते। बहुत कम गरीब बच्चे कॉलेज और यूनिवर्सिटी तक पहुंच पाते हैं, क्योंकि अच्छी क्वालिटी की उच्च शिक्षा महंगी होती है और फिर उसमें दाखिला मिल पाना भी कठिन होता है।

भारत में सरकारी स्कूलों, कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में 70 और 80 के दशक तक व्यवस्थाएं अच्छी रहती थीं और मामूली फीस पर गरीब परिवारों के बच्चों को भी अच्छी शिक्षा मिल जाती थी। भारतीय संविधान ने अनुसूचित जातियों, जनजातियों और ओबीसी वर्ग के लिए आरक्षण के जो प्रावधान किए हैं, उनसे भी लाखों परिवारों को अपने बच्चों को अच्छी शिक्षा देने के सुअवसर मिलते रहे। 1991 के बाद के उदारीकरण के दौर में सरकारी नीतियों के कारण शिक्षा में निजी क्षेत्र का तेजी से विकास हुआ, जो मुख्यतः तकनीकी और पेशेवर शिक्षा तक सीमित था।

पिछले तीन दशकों में सरकारी कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में कुप्रबंध और वित्तीय संसाधनों की कमी के कारण समूची शिक्षा व्यवस्था अपनी गुणवत्ता और सार्थकता खो चुकी है। आज हमारी शिक्षा व्यवस्था में हर स्तर पर वर्ग-विभाजन देखने को मिलेगा। अभिजात वर्ग और मध्यवर्ग के बच्चों के लिए अच्छे स्कूल, कॉलेज और यूनिवर्सिटियां हैं, जो निजी क्षेत्र द्वारा संचालित किए जाते हैं। गरीब और पिछड़े वर्ग के बच्चे सरकारी स्कूलों, कॉलेजों और यूनिवर्सिटियों में पढ़ने के लिए मजबूर हैं, जहां पर अध्ययन-अध्यापन, अनुशासन, मूल्यांकन और होस्टल आदि की व्यवस्थाएं लगातार गिरावट की दिशा में जाती दिखाई देती हैं।

चुनाव परिणाम घोषित होने के बाद बनने वाली नई सरकार के ऊपर यह जिम्मेदारी आएगी कि वह 21वीं सदी की जरूरतों के अनुरूप मानव विकास को उच्च प्राथमिकता दे। यह तभी संभव होगा, जब जल्दी से जल्दी एक नई शिक्षा नीति घोषित की जाए, जिस पर राष्ट्रीय स्तर पर एक सर्वानुमति बनाई जा सके। 2014 में भाजपा ने अपने चुनावी घोषणापत्र में नई शिक्षा नीति बनाने का वायदा किया था। इसके लिए दो समितियां टीएसआर सुब्रमण्यम और कस्तूरीरंगन की अध्यक्षता में बनाई गई, किंतु किन्हीं कारणों से नई शिक्षा नीति घोषित नहीं हो पाई। नई शिक्षा नीति कैसी हो, इस पर अगले दो माह में कुछ न कुछ चर्चा होनी चाहिए, क्योंकि अगले 20 साल तक देश आर्थिक और सामाजिक विकास के किस रास्ते पर कैसे और कितना आगे बढ़ेगा, इसकी रूपरेखा बहुत कुछ नई शिक्षा नीति पर निर्भर करेगी।

सभी राष्ट्रीय व क्षेत्रीय दलों से यह उम्मीद की जानी चाहिए कि वे स्पष्ट करें कि उनके अनुसार अगले 20 वर्षों के लिए अच्छी क्वालिटी की शिक्षा समाज के हर वर्ग को कैसे सुलभ कराई जा सकेगी? 1966 में भारत सरकार द्वारा नई शिक्षा नीति बनाने के लिए गठित कोठारी कमीशन ने सुझाव दिया था कि देश 1986 तक शिक्षा पर जीएनपी का छह प्रतिशत खर्च करे। 52 वर्षों बाद अभी तक यह खर्च जीएनपी के 3.5 प्रतिशत तक पहुंच पाया है। क्या अगले तीन वर्षों में हम इस लक्ष्य को पूरा कर सकते हैं?

(ये लेखक के अपने विचार हैं)